

पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में**प्रदीप कुमार दुबे एवं अन्य****बनाम****कृष्ण गोपाल दुबे एवं अन्य**

1999 की प्रथम अपील सं. 597

03 सितम्बर 2025

(माननीय न्यायमूर्ति श्री खातिम रेजा)**विचार के लिए मुद्दा**

क्या वाद में शामिल संपत्तियाँ अभी भी संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्तियाँ हैं या उत्तरदाताओं द्वारा दावा किए अनुसार पहले ही विभाजित कर दी गई थीं। क्या गंगा देवी (पूर्वज की पुत्री) द्वारा दान-पत्र स्त्रीधन अर्जन के रूप में वैध है या वादीगण के संबंध में शून्य है। क्या वादीगण, जो पहले के विभाजन वाद (1970) में पक्षकार नहीं थे, पूर्व न्यायिकता/विबंधन/आदेश XXIII नियम 3-क सीपीसी के सिद्धांतों द्वारा वर्जित हैं। क्या अपील के लंबित रहने के दौरान वाद की भूमि का निरंतर हस्तांतरण विषय-वस्तु को संरक्षित करने के लिए निषेधाज्ञा प्रदान करने को उचित ठहराता है।

हेडनोट्स

विभाजन वाद और संयुक्तता की धारणा - हिंदू विधि में, संयुक्तता के पक्ष में धारणा होती है; इसे सिद्ध करने का भार पूर्व विभाजन का दावा करने वाले पक्ष पर होता है। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम से पूर्व पुत्री द्वारा दान - पुत्री के स्त्रीधन होने का दावा की गई संपत्ति, जब तक अन्यथा सिद्ध न हो, सहदायिक संपत्ति का हिस्सा नहीं है; मामला अंतिम निर्णय के लिए छोड़ दिया गया है। लिस पेंडेंस का सिद्धांत - अपील के लंबित रहने के दौरान कोई भी संक्रामण संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 52 के अधीन है, लेकिन न्यायालय का कर्तव्य है कि वह कार्यवाही की बहुलता को रोकने के लिए विषय-वस्तु को संरक्षित रखे। अस्थायी निषेधाज्ञा के सिद्धांत - निषेधाज्ञा प्रदान करना (i) प्रथम दृष्टया मामले के अस्तित्व, (ii) सुविधा के संतुलन, और (iii) अपूरणीय क्षति (दलपत कुमार बनाम प्रह्लाद सिंह, एआईआर 1993 एससी 276) पर निर्भर करता है। सहदायिक हित का क्रेता - कब्जे का दावा नहीं कर सकता; केवल विभाजन के लिए वाद दायर करने का हकदार है (एआईआर 1953 एससी 487)। लंबित लिस में न्यायालय का कर्तव्य - एक बार लिस को न्यायनिर्णयन के लिए स्वीकार कर लिया जाए, तो विषय-वस्तु को संरक्षित किया जाना चाहिए ताकि डिक्री निष्फल

न हो जाए (2001 (2) पीएलजेआर 268)। निषेध आदेश - अपील के लंबित रहने के दौरान अपीलकर्ताओं और उत्तरदाताओं दोनों को मुकदमे की संपत्ति को अलग करने, बेचने या स्थानांतरित करने से रोका गया है।

न्याय दृष्टान्त

(2001) 2 पीएलजेआर 268; एआईआर 1953 एससी 487; एआईआर 2005 एससी 104; एआईआर 1993 एससी 276; (2011) 9 एससीसी 451; 2020 एससी 823; एआईआर 1991 पैट 53

अधिनियमों की सूची

दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908

मुख्य शब्दों की सूची

विलंबित मामलों का सिद्धांत, अस्थायी निषेधाज्ञा, प्रथम दृष्टया मामला, सुविधा का संतुलन, अपूरणीय क्षति, न्यायिक निर्णय, विबंधन

प्रकरण से उत्पन्न

विद्वान उप-न्यायाधीश-V, पूर्णिया द्वारा 1992 के स्वामित्व (विभाजन) वाद संख्या 127 में पारित दिनांक 29.09.1999 के निर्णय और डिक्री से।

पक्षकारों की ओर से उपस्थिति

अपीलकर्ता/वादीगणों की ओर से: श्री जितेंद्र किशोर वर्मा, अधिवक्ता; श्री अर्जुन प्रसाद सिंह, अधिवक्ता

उत्तरदाता संख्या 5 से 13 की ओर से: श्री शशि शेखर द्विवेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता

उत्तरदाता संख्या 4(ii) की ओर से: श्री जे.एस. अरोड़ा, वरिष्ठ अधिवक्ता; श्री रवि भाटिया, अधिवक्ता; श्री राकेश कुमार, अधिवक्ता; श्री हिमांशु शेखर, अधिवक्ता

रिपोर्टर जिनके द्वारा हेडनोट बनाया गया: रवि राज, अधिवक्ता

माननीय पटना उच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में

1999 की प्रथम अपील सं. 597

=====

प्रदीप कुमार दुबे और अन्य

... .. अपीलकर्ता/ओं

बनाम

कृष्ण गोपाल दुबे और अन्य

.....उत्तरदाता/ओं

=====

उपस्थिति :

अपीलकर्ता/ओं के लिए:	:	श्री जितेंद्र किशोर वर्मा, अधिवक्ता
		श्री अर्जुन प्रसाद सिंह, अधिवक्ता
उत्तरदाता सं. 5 से 13 के लिए :	:	श्री शशि शेखर द्विवेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता
उत्तरदाता सं. 4 (ii) के लिए :	:	श्री जे. एस. अरोड़ा, वरिष्ठ अधिवक्ता,
		श्री रवि भाटिया, अधिवक्ता
		श्री राकेश कुमार, अधिवक्ता
		श्री हिमांशु शेखर, अधिवक्ता

=====

गणपूर्ति: माननीय न्यायमूर्ति श्री खातिम रेज़ा

सीएवी आदेश

78 03-09-2025 अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री जितेंद्र किशोर वर्मा, उत्तरदाता सं. 5 से 13 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शशि शेखर द्विवेदी और उत्तरदाता सं.4(ii) के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जे.एस. अरोड़ा को सुना गया।

संदर्भ में: 2022 का आई. ए. सं. 10

2. यह अंतरिम आवेदन अपीलकर्ताओं द्वारा आदेश XXXIX नियम 1 और 2 के साथ धारा 151 के अंतर्गत दायर किया गया है। यह आवेदन उत्तरदाताओं/विपक्षिणों

को इस अपील के लंबित रहने के दौरान वादग्रस्त भूमि की बिक्री, हस्तांतरण, अलगाव और भौतिक स्वरूप में परिवर्तन करने से रोकने के लिए है और साथ ही खरीदारों को वादग्रस्त भूमि पर बलपूर्वक कब्जा करने से रोकने के लिए भी है।

3. विद्वान उप-न्यायाधीश-V, पूर्णिया द्वारा दिनांक 29.09.1999 को 1992 का स्वामित्व(विभाजन) मामला सं.127 में पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध वादी/अपीलकर्ताओं द्वारा तत्काल प्रथम अपील दायर की गई है, जिसके द्वारा, निम्नतर विद्वान न्यायालय ने यह मानते हुए मामला को खारिज कर दिया है कि वादग्रस्त भूमि के संबंध में पक्षकारों के बीच स्वामित्व और कब्जे की एकता नहीं है और वादी दावा की गई संपत्तियों में अपने हिस्से के हकदार नहीं हैं। वादी/अपीलकर्ताओं ने संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति में अपने 2/15 वें हिस्से के विभाजन के लिए उत्तरदाताओं/विपक्षिणों के विरुद्ध 1992 का स्वामित्व (विभाजन) मामला सं.127 दायर किया है। वादी द्वारा मामला में यह तर्क दिया गया था कि स्वर्गीय कालिका प्र.द.दुबे वादी और उत्तरदाताओं के सामान्य पूर्वज थे, जिनकी मृत्यु वर्ष 1948 में हुई थी और वे अपने पीछे चार पुत्र और दो पुत्रियाँ छोड़ गए थे। स्वर्गीय कालिका पंडित दुबे की पुत्रियों को मामला की संपत्ति विरासत में नहीं मिली क्योंकि कालिका पंडित दुबे की मृत्यु वर्ष 1948 में हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के लागू होने से पहले हो गई थी। चार पुत्रों में से, सबसे बड़े पुत्र राम शरण दुबे की मृत्यु हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के लागू होने से पहले हो गई थी, और वे अपने पीछे एक पुत्र प्रभात दुबे और तीन पुत्रियाँ छोड़ गए थे। यह भी तर्क दिया गया है कि उक्त प्रभात दुबे की मृत्यु निःसंतान हुई और संयुक्त परिवार का हिस्सा तीन जीवित भाइयों को मिला। एक पुत्री लक्ष्मी नारायण दुबे की मृत्यु कृष्ण गोपाल दुबे और कमल दुबे (उत्तरदाता सं.1 और 2) को छोड़कर हुई। कृष्ण गोपाल दुबे के पुत्र वर्तमान मामला में वादी हैं और प्रकाश नारायण दुबे और शंभू दयाल दुबे के उत्तराधिकारी उत्तरदाता हैं। यह भी तर्क दिया गया है कि मोस्ट. स्वर्गीय कालिका पंडित दुबे की पुत्री गंगा देवी का संयुक्त परिवार की संपत्ति में कोई अधिकार नहीं था, लेकिन उन्होंने उत्तरदाता सं. 8

और 9, जो उत्तरदाता सं. 4, सत्य नारायण दुबे के पुत्र हैं, के पक्ष में पंजीकृत दान विलेख निष्पादित किया, और उसके बाद, उत्तरदाता सं. 8 और 9 ने उत्तरदाता द्वितीय सेट के पक्ष में मामला की अनुसूची-ख की भूमि के संबंध में बिना किसी कानूनी अधिकार के बिक्री विलेख निष्पादित किया और यह प्रारंभ से ही शून्य है। यह भी तर्क दिया गया है कि वादी और उत्तरदाता मिताक्षरा हिंदू विधि विद्यालय द्वारा शासित एक संयुक्त हिंदू परिवार के सदस्य हैं और परिवार के पास बहुत बड़ा भूमि क्षेत्र है जिस पर पक्षकार संयुक्त रूप से बिना किसी सीमा और सीमा के संयुक्त कब्जे में हैं और चूँकि परिवार के सदस्यों की संख्या बढ़ गई है, इसलिए पक्षकारों के लिए संयुक्त आवास और निवास में बने रहना असुविधाजनक हो जाता है और इस प्रकार पक्षकार सुविधा के लिए आवास और निवास में अलग हो गए हैं, लेकिन वे खेती और व्यवसाय में संयुक्त हैं। इसके अलावा, वे फसलों को अपने-अपने हिस्से के अनुसार बाँटते हैं। लेकिन, सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए, वादी और उत्तरदाता प्रथम पक्ष का परिवार मामला की संपत्तियों के संबंध में संयुक्त है और उत्तरदाता सं. 8 और 9 ने पंजीकृत उपहार विलेख के आधार पर अनुसूची-बी भूमि पर कोई अधिकार, स्वामित्व और हित अर्जित नहीं किया है। उक्त उपहार वादी पर बाध्यकारी नहीं है और प्रारंभ से ही शून्य है।

4. वादीगण का यह भी मामला है कि उत्तरदाता सं.3 के पुत्रों में से एक उत्तरदाता सं. 6 ने संयुक्त परिवार की संपत्ति के बंटवारे के लिए उप-न्यायाधीश-V, पूर्णिया की न्यायलय में 1970 का टाइटल (बंटवारा) मामला सं. 292 दायर किया था और उस मामला में प्रकाश नारायण दुबे और संभू दयाल दुबे की शाखा के सदस्यों को ही पक्ष बनाया गया था और वादीगण और उनके पूर्वजों को 1970 का टाइटल (बंटवारा) मामला सं. 292 में पक्ष नहीं बनाया गया था। उस मामला में, उस मामला के पक्षकारों ने एक-दूसरे के साथ मिलीभगत करके मामला का समझौता करवा लिया और एक समझौता डिक्री प्राप्त कर ली और उक्त समझौता डिक्री वादीगण पर बाध्यकारी नहीं है। वादपत्र में आगे यह भी दलील दी गई है कि मथुरी साह नामक व्यक्ति ने प्रभात दुबे व अन्य के विरुद्ध संयुक्त परिवार की कुछ भूमि के

भूखंडों के संबंध में मुंसिफ सदर की न्यायालय में 1955 का स्वामित्व मामला सं. 737 दायर किया था, जिसमें लक्ष्मी नारायण दुबे ने परिवार के सदस्यों के बीच अलगाव का बयान दिया था, लेकिन वह बयान उस मुकदमे से संबंधित भूखंड तक ही सीमित था और वह बयान संयुक्त परिवार की संपत्तियों के विभाजन की स्वीकृति नहीं था। पुनरीक्षण सर्वेक्षण अधिकार अभिलेख में, संयुक्त परिवार की संपत्तियों को संयुक्त रूप से दर्ज किया गया है और कुछ संपत्तियां परिवार के अलग-अलग सदस्यों के नाम पर दर्ज की गई हैं। वादी ने विभाजन की मांग की, लेकिन उसे अस्वीकार कर दिया गया, इसलिए, विभाजन का मामला उत्पन्न हुआ।

5. सम्मन पर उत्तरदाता उपस्थित हुए और लिखित बयानों के तीन सेट दाखिल किए, एक उत्तरदाता सं. 1 और 2 की ओर से, दूसरा उत्तरदाता सं. 3 से 12 की ओर से और तीसरा उत्तरदाता सं. 14 से 17 की ओर से।

6. उत्तरदाता सं.1 और 2 ने वादी के मामले का समर्थन किया है। यह स्वीकार किया गया है कि कालिका पंडित दुबे वादी और उत्तरदाताओं के सामान्य पूर्वज थे और वादी और उत्तरदाता-प्रथम के परिवार के सदस्यों के बीच अतीत में मौखिक या दस्तावेजी रूप से कोई बंटवारा नहीं हुआ है। यह तर्क दिया गया है कि राम शरण दुबे की मृत्यु 1956 से पहले हो गई थी और वे अपने पीछे प्रभात दुबे और चार पुत्रियाँ छोड़ गए थे।

7. इसके विपरीत, मुख्य उत्तरदाता सं. 3 से 12 का मामला यह है कि वादी अनुसूची-ख की संपत्ति के संबंध में गंगा देवी के गैर-स्वामित्व की घोषणा चाहते हैं और उनके द्वारा निष्पादित दान विलेख को रद्द करना चाहते हैं, जो केवल विशिष्ट अनुतोष द्वारा ही किया जा सकता है और वह भी यथामूल्य शुल्क का भुगतान करके, बशर्ते कि सीमा अवधि इसकी अनुमति दे, लेकिन तथ्य यह है कि मामला सीमा अवधि द्वारा वर्जित है। उत्तरदाता उत्तरदाताओं ने अपने लिखित बयान में आगे दलील दी कि कालिका पंडित दुबे की मृत्यु वर्ष 1948 में हुई थी और वे अपने पीछे चार पुत्र और छह पुत्रियाँ छोड़ गए थे, न कि दो पुत्रियाँ, जैसा कि वादी ने दलील दी है। उन छह पुत्रियों में से दो अभी भी जीवित हैं, अर्थात् सुशीला

देवी और बिलासी देवी। आगे यह भी तर्क दिया गया है कि राम शरण दुबे की मृत्यु वर्ष 1956 में हुई थी और वे अपने पीछे इकलौते पुत्र प्रभात दुबे और चार पुत्रियाँ छोड़ गए थे। उक्त प्रभात दुबे की मृत्यु अविवाहित अवस्था में हुई और वादीगण ने वादपत्र में प्रभात दुबे की मृत्यु की तिथि नहीं दी है। राम शरण दुबे अपनी विधवा सरवती देवी के पीछे रहते हुए मर गए, जिनकी मृत्यु भी वर्ष 1958 में अधिकार अभिलेखों के प्रकाशन के काफी बाद वर्ष 1965 में हुई। उत्तरदाताओं का यह भी कहना है कि कालिका प्रसाद दुबे ने अपने जीवनकाल में ही अपनी सारी ज़मीन-जायदाद अपने पुत्रों में बाँट दी थी और उस बँटवारे में रामशरण दुबे और लक्ष्मी नारायण दुबे, जो वादीगण के दादा थे, को संयुक्त परिवार में अपने हिस्से के बदले अलग-अलग संपत्तियाँ मिलीं और दोनों ने कालिका प्रसाद दुबे के परिवार के पूरे कारोबार से खुद को अलग कर लिया। कालिका प्रसाद दुबे के बाकी दो पुत्र, प्रकाश नारायण दुबे और शंभू दयाल दुबे, संयुक्त रूप से बने रहे। उन्होंने अपनी ज़मीनों को अपनी संपत्ति के रूप में बेचा और संयुक्त रूप से ज़मीनें बेचीं, संयुक्त रूप से या अलग-अलग किरायेदार बनाए और ज़मीन अधिग्रहण पर मुआवज़ा भी लिया। उन्होंने अपने खिलाफ़ शुरू किए गए सीलिंग मामले में अपनी ज़मीनें भी सौंप दीं। उत्तरदाता पक्ष का यह भी कहना है कि राम शरण दुबे ने बंटवारे के बाद अपनी पूरी संपत्ति अलग-अलग पंजीकृत बिक्री विलेखों के ज़रिए अलग-अलग खरीदारों को बेच दी और अपने परिवार के सदस्यों के साथ पटना चले गए और अलग से अपना व्यवसाय करने लगे। इस व्यवसाय के दौरान उन्होंने राज्य सरकार को बिक्री कर का भुगतान नहीं किया और इसकी वसूली के लिए राम शरण दुबे के खिलाफ़ 1951-52 का सर्टिफिकेट मामला सं. 356 शुरू किया गया। उस मामले में, उत्तरदाताओं की संपत्ति भी कुर्क कर ली गई थी, लेकिन उत्तरदाताओं द्वारा उठाई गई आपत्ति पर, उन्हें उत्तरदाताओं/आपत्तिकर्ताओं के पक्ष में छोड़ दिया गया। यह पूरी तरह से झूठा और झूठा दावा किया गया है कि राम शरण दुबे की मृत्यु हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के लागू होने से बहुत पहले हो गई थी। वादी की भ्रामक दलीलें इस तथ्य से स्पष्ट होती हैं कि कालिका

प्रसाद दुबे की एक बेटी, गंगा देवी ने शंभू दयाल दुबे और अन्य लोगों, जिनमें राम शरण दुबे की पत्नी सरस्वती देवी भी शामिल थीं, के खिलाफ 1959 में एक टाइटल सूट सं. 216 दायर किया था और उस मुकदमे में प्रभात कुमार दुबे को भी उत्तरदाता के रूप में शामिल किया गया था। आगे यह तर्क दिया गया है कि प्रभात कुमार दुबे ने उस मुकदमे में अपना लिखित बयान 09.05.1959 को दायर किया था और उनके लिखित बयान में यह स्वीकार किया गया था कि कालिका प्रसाद दुबे की पुत्री गंगा देवी को अपने पिता की संपत्ति में कोई हिस्सा विरासत में नहीं मिला था, बल्कि गंगा देवी ने अपनी बचत से अनुसूची-बी की ज़मीन खरीदी थी और दिनांक 08.04.1946 को दो पंजीकृत बिक्री विलेखों के माध्यम से अपने आभूषणों का निपटान करने के बाद भी, और खरीद की तारीख से, गंगा देवी उन संपत्तियों पर पूर्ण स्वामी के रूप में काबिज़ रहीं। सर्वेक्षण कार्रवाई के दौरान, सर्वेक्षण प्राधिकारी ने पाया कि उक्त संपत्ति गंगा देवी की है और तदनुसार उन संपत्तियों के संबंध में गंगा देवी का नाम अधिकार अभिलेखों में दर्ज किया गया। गंगा देवी की कुछ संपत्तियाँ गलत तरीके से उनके भाई के नाम दर्ज कर दी गई थीं, जिसके विरुद्ध उन्होंने उक्त मुकदमे में उक्त गलत सर्वेक्षण प्रविष्टि को सही कराने के लिए 1959 का टाइटल सूट सं. 216 दायर किया था। वादी के पिता और दादा ने लिखित बयान दायर कर गंगा देवी को उन संपत्तियों का अनन्य स्वामी स्वीकार किया था और कहा था कि गंगा देवी की उक्त संपत्ति से उनका कोई लेना-देना नहीं है। लिखित बयान में आगे यह भी दलील दी गई है कि वादी और उत्तरदाता सं. 1 और 2 का प्रकाश नारायण दुबे और शंभू दयाल दुबे की संपत्तियों से कोई लेना-देना नहीं था और न ही उनका उसमें कोई हिस्सा था, इसलिए उन्हें 1970 के टाइटल सूट सं. 292 में पक्षकार के रूप में शामिल नहीं किया गया है और न ही उन्हें शामिल करने की आवश्यकता थी। आगे यह भी दलील दी गई है कि लक्ष्मी नारायण दुबे ने दो बार शादी की थी और उनकी मृत्यु उनकी दूसरी पत्नी श्रीमती आनंदी देवी, तीन बेटों और एक बेटी को छोड़कर हुई। लक्ष्मी नारायण दुबे की पत्नी ने लक्ष्मी नारायण दुबे की संपत्ति में अपने हिस्से का दावा किया और कृष्ण गोपाल

दुबे और कमला प्रसाद के खिलाफ चकबंदी अपील सं. 174, 1980-81 भी दायर की थी। उक्त दावा इस प्रकार स्वीकार किया गया कि उक्त दूसरी पत्नी, तीन पुत्र और पुत्रियाँ भी इस मुकदमे में आवश्यक पक्षकार हैं, जिन्हें वर्तमान मुकदमे में पक्षकार नहीं बनाया गया है। अतः, वादीगण दावे के अनुसार किसी भी अनुतोष के हकदार नहीं हैं और मुकदमा खारिज किए जाने योग्य है।

8. निम्न विद्वान न्यायालयों ने दलीलों, साथ ही दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्यों पर विचार करने के बाद यह माना कि मामला के पक्षकारों के बीच स्वामित्व और कब्जे में कोई एकता नहीं है और वादी किसी भी अनुतोष के हकदार नहीं हैं। अपीलाधीन निर्णय और डिक्री को वादी/अपीलकर्ताओं द्वारा वर्तमान प्रथम अपील में चुनौती दी गई है।

9. वादी/अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि स्वर्गीय कालिका पंडित दुबे उनके सामान्य पूर्वज थे, जिन्होंने लगभग 250 एकड़ ज़मीन अर्जित की थी और उसे स्वर्गीय कालिका पंडित दुबे के सभी पुत्रों में बराबर-बराबर बाँटा जाना था, लेकिन मौज़ा हरचंदपुर में 10-11 एकड़ ज़मीन को छोड़कर कुछ संपत्तियाँ, बाकी ज़मीन उत्तरदाताओं प्रकाश नारायण दुबे और शंभू दयाल दुबे के कब्जे में है, लगभग 250 एकड़। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि हिंदू कानून में, संयुक्तता की धारणा होती है और जो लोग अन्यथा आरोप लगाते हैं, उन्हें इसे साबित करना होता है, लेकिन वर्तमान मामले में, उत्तरदाता/प्रतिवादि सीमा और सीमाओं द्वारा विभाजन के तथ्य को साबित करने में बुरी तरह विफल रहे हैं। उत्तरदाताओं द्वारा अपने दावे के समर्थन में विभाजन का कोई दस्तावेज़ या विभाजन का ज़ापन दायर नहीं किया गया है। उक्त उत्तरदाता उत्तरदाताओं द्वारा विभाजन की तारीख का खुलासा नहीं किया गया है। वादी का नाम पुनरीक्षण सर्वेक्षण खतियान में केवल लगभग 11 एकड़ ज़मीन के संबंध में दर्ज किया गया था, जबकि उत्तरदाताओं के पास 250 एकड़ ज़मीन है, जिसका बंटवारा होना है।

10. वादी/अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने दृढ़ता से दलील दी है कि

उत्तरदाताओं/प्रतिवादियों ने 50 से अधिक विक्रय विलेख निष्पादित किए हैं, जिनमें से अपीलकर्ताओं ने वर्तमान कार्यवाही में उत्तरदाताओं/प्रतिवादियों द्वारा निष्पादित 24 विक्रय विलेख दाखिल किए हैं। यदि इस अपील के लंबित रहने के दौरान उत्तरदाताओं को मुकदमे की भूमि बेचने से नहीं रोका जाता है, तो इस अपील को दायर करने का मूल उद्देश्य ही विफल हो जाएगा। विद्वान विचारण न्यायालय ने गलत तरीके से माना कि जब विभाजन साबित हो जाता है तो यह माना जाएगा कि विभाजन सीमा और सीमा द्वारा हुआ था जब तक कि इसे दूसरे पक्ष द्वारा साक्ष्य में खंडित नहीं किया जाता है। वंशावली को स्वीकार किया जाता है और सीमा और सीमा द्वारा विभाजन साबित नहीं होता है, इसलिए, वादी/अपीलकर्ताओं के पास प्रथम दृष्टया मामला है और सुविधा का संतुलन यथास्थिति बनाए रखने में निहित है, अर्थात्, दोनों पक्षों को मुकदमे की भूमि बेचने से रोका जाना चाहिए। यदि इस अपील के लंबित रहने के दौरान मामला की भूमि अजनबियों को बेच दी जाती है तो वादी/अपीलकर्ताओं को अपूरणीय क्षति और क्षति होगी।

11. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि संयुक्त परिवार की कुछ संपत्तियाँ चार व्यक्तियों के नाम पर संयुक्त रूप से दर्ज थीं और उत्तरदाताओं ने अपने लिखित बयान में वादी के स्वामित्व को स्वीकार किया था, इसके बावजूद उत्तरदाता उन ज़मीनों को भी बेच रहे हैं और हाल ही में 15.02.2024 को कुछ ज़मीनें बेचीं। उत्तरदाताओं, अर्थात् अमित दुबे, निधि दुबे, मनीष दुबे और हिमांशु दुबे ने 4 डिसमिल और 183 करी बेचीं और आगे 3 डिसमिल ज़मीन पंजीकृत विलेख सं. 2923, 2922 दिनांक 15.02.2024 द्वारा बेची गई है। यह दृढ़ता से प्रस्तुत किया गया है कि संयुक्त खाते की अधिकांश ज़मीनें सीलिंग कार्यवाही में दे दी गई हैं और बाकी बेची जा रही हैं।

12. उपरोक्त प्रस्तुतियों के आधार पर, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने **धर्म नाथ ओझा बनाम रघु नाथ ओझा (2001) 2 पीएलजेआर 268** के मामले में इस न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें इस न्यायालय ने माना है कि यदि

किसी मुकदमे को न्यायनिर्णय के लिए स्वीकार किया जाता है, तो विषय-वस्तु को संरक्षित करना न्यायालय का कर्तव्य है ताकि अंतिम न्यायनिर्णय के समय डिक्री निष्प्रभावी न हो जाए।

13. यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि किसी भी विमामला के विषय के संरक्षण का मौलिक नियम कानून की न्यायालय में निर्णय लंबित है। किसी भी संपत्ति से जुड़े मुकदमेबाजी के लंबित रहने के दौरान अस्थायी निषेधाज्ञा की अवधारणा का सार यह है कि इसके बर्बाद होने, नुकसान और अलगाव को रोकने के लिए पक्षकार को नुकसान पहुँचाया गया है जो अंततः सफल हो सकता है और जो कार्यवाही की बहुलता का कारण भी बन सकता है।

14. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा **सिद्धेश्वर मुखर्जी बनाम भुवनेश्वर प्रसाद नारायण सिंह एवं अन्य के मामले, जो एआईआर 1953 एससी 487** में रिपोर्ट किया गया है, का हवाला दिया गया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि यदि किसी व्यक्ति ने संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति में अविभाजित हिस्सेदारी खरीदी है, तो वह उक्त खरीदी गई संपत्ति पर कब्जे का हकदार नहीं है।

15. **मेहरवाल खेवाजी ट्रस्ट, फरीदकोट बनाम बलदेव दास** के मामले में **एआईआर 2005 एससी 104** में प्रतिवेदित किया गया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया है:-

10. “चाहे जो भी हो, श्री सच्चर का यह तर्क देना सही है कि जब तक और जब तक मुकदमे के किसी पक्ष द्वारा अपूरणीय क्षति या क्षति का मामला नहीं बनाया जाता है, तब तक न्यायालय को संपत्ति की प्रकृति को बदलने की अनुमति नहीं देनी चाहिए जिसमें संपत्ति का अलगाव या हस्तांतरण भी शामिल है जिससे पक्ष को नुकसान या क्षति हो सकती है जो

अंततः सफल हो सकता है और आगे कई कार्यवाहियों का कारण बन सकता है।

16. *दलपत कुमार एवं अन्य बनाम प्रहलाद सिंह एवं अन्य* के मामले में *एआईआर 1993 एससी 276* में प्रतिवेदित किया गया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रथम दृष्टया मामले, सुविधा संतुलन और अपूरणीय क्षति के अर्थ की व्याख्या की है।

17. यह दृढ़तापूर्वक प्रस्तुत किया गया है कि उत्तरदाता इस निषेधाज्ञा याचिका के लंबित रहने के दौरान भी वादी/अपीलकर्ताओं के दावे को विफल करने के लिए मुकदमे की भूमि को गुप्त रूप से बेच रहे हैं।

18. दूसरी ओर, उत्तरदाता/प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि वर्तमान अपील 1999 से लंबित है और वर्तमान अपील के लंबित रहने के दौरान, अपीलकर्ताओं ने अपनी संपत्तियों को विभाजन के आधार पर अपनी अनन्य संपत्ति बताते हुए उनका निपटान किया है। इसी प्रकार, उत्तरदाताओं ने भी अपनी संपत्तियों का निपटान किया है और एक पक्ष को दूसरे पक्ष की संपत्तियों से कोई सरोकार नहीं है। इसके बावजूद, उत्तरदाताओं को परेशान करने के उद्देश्य से, वादी ने विभाजन के लिए यह कष्टदायक मामला दायर किया है और उन्होंने वर्ष 2022 में वर्तमान निषेधाज्ञा याचिका भी दायर की है। वर्तमान मामले में गंगा देवी की स्व-अर्जित संपत्तियां भी शामिल हैं, जो निश्चित रूप से सहदायिक नहीं थीं और उन्होंने 07.08.1971 को अपनी संपत्तियां पहले ही दान कर दी थीं, लेकिन न तो यह घोषणा की गई है कि वे संपत्तियां उनकी स्त्रीधन नहीं हैं और न ही उनके द्वारा निष्पादित उपहार विलेख को चुनौती दी गई है। वादी के पिता ने पहले के मुकदमे में स्वीकार किया था कि विभाजन बहुत पहले ही प्रभावित हो चुका है और एस्टोपल का सिद्धांत लागू रहेगा और इसलिए, वादी को अपने पिता के रुख के विपरीत दलीलें देने से रोका जाता है। वादी उत्तरदाता सं. 2 के उत्तराधिकारी होने के नाते, न तो कोई दावा कर सकते हैं और न ही अपने पूर्ववर्तियों द्वारा पहले के मुकदमे में लिए गए रुख के विपरीत रुख अपना सकते हैं,

जो कि पूर्व न्यायिकता के सिद्धांतों के तहत निषिद्ध है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि 1970 की शीर्षक मामला सं. 292 में पारित समझौता डिक्री, जो अंतिम और निर्णायक है, को कभी चुनौती नहीं दी गई है और न ही इसे सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXIII नियम 3-क के प्रावधानों के मद्देनजर एक अलग मुकदमे में चुनौती दी जा सकती है, क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पहले ही निर्णय दिया है कि यदि समझौते का कोई तीसरा पक्ष प्रभावित महसूस करता है, तो उसे भी उसी न्यायालय में जाना चाहिए, लेकिन वह अलग से मुकदमा दायर नहीं कर सकता। वर्तमान मामला में, उस समझौता डिक्री को चुनौती देने के लिए कोई अनुतोष नहीं मांगी गई है और इसलिए, वर्तमान मामला में कोई भी अनुतोष प्रदान करना, 1970 की टाइटल सूट सं. 292 की डिक्री के समानांतर एक स्वतंत्र और पृथक डिक्री की अनुमति देने के समान होगा, जो एक दूसरे के पूर्णतः विरोधाभासी होंगे, जो कानून की दृष्टि में अस्वीकार्य है। वादी/अपीलकर्ताओं ने स्वयं विक्रय विलेख के पाठ में यह स्वीकार करते हुए संपत्तियों का निपटान किया है कि उनके पूर्वजों के बीच पहले से ही विभाजन हो चुका है और उनकी संबंधित भूमि के लिए अलग जमाबंदी मौजूद है। इस प्रकार, उनकी यह स्वीकृति, संपत्तियों को संयुक्त परिवार की संपत्ति के रूप में दावा करने पर उनके विरुद्ध रोक भी लगाती है। गंगा देवी की संपत्तियों के संबंध में, जो उनके स्त्रीधन द्वारा खरीदी गई थीं, विभाजन का दावा, बेनामी लेनदेन (निषेध) अधिनियम, 1988 के प्रावधान के अंतर्गत वर्जित है। वादी/अपीलकर्ताओं के पास स्पष्ट रूप से न तो प्रथम दृष्टया निषेधाज्ञा प्रदान करने का कोई मामला है और न ही सुविधा का संतुलन उनके पक्ष में है और निषेधाज्ञा प्रदान करने से, वास्तव में, उत्तरदाताओं/प्रतिवादियों को गंभीर अपूरणीय क्षति होगी और दूसरी ओर, निषेधाज्ञा प्रदान न करने से, वादी/अपीलकर्ताओं को कोई नुकसान नहीं होगा। इसलिए, वादी/अपीलकर्ताओं द्वारा निषेधाज्ञा प्रदान करने के लिए दायर निषेधाज्ञा का आवेदन स्वीकार करने योग्य बिल्कुल भी नहीं है।

19. उत्तरदाताओं/प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने *मारबसप्पा (मृत) बनाम*

निंगपा (मृत) बनाम निंगपा (मृत) बनाम निंगपा (मृत) के मामले में दिए गए निर्णय का हवाला दिया है, जो कि (2011) 9 एससीसी 451 में प्रतिवेदित है। इसमें सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि "स्त्रीधन के माध्यम से खरीदी गई संपत्ति का विभाजन नहीं किया जा सकता।

20. जहां तक यथास्थिति के आदेश का सवाल है, उन्होंने *पूजा मित्तल एवं अन्य बनाम राकेश कुमार एवं अन्य* के मामले में दिए गए निर्णय का भी हवाला दिया है, जिसकी प्रतिवेदन *एआईआर एससीसी ऑनलाइन 2020 एससी 823* में दी गई है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि "यदि निषेधाज्ञा के आवश्यक तत्व पूरे नहीं किए जाते हैं तो यथास्थिति का कोई आदेश नहीं दिया जा सकता है।"

21. उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता ने बेनामी लेनदेन (निषेध) अधिनियम, 1988 के तहत महिलाओं की संपत्ति के संबंध में एआईआर 1991 पैट 53 (कंडिका सं. 36 और 37) में प्रतिवेदन किए गए रामेश्वर मिस्त्री और अन्य बनाम बेबूलाल मिस्त्री के मामले में एक निर्णय पर भरोसा किया है।।

22. पक्षों के प्रतिद्वंद्वी तर्कों और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करते हुए, यह न्यायालय यह पाता है कि यह स्वीकृत तथ्य है कि स्वर्गीय कालिका पंडित दुबे वादी और उत्तरदाता के सामान्य पूर्वज थे। वादी के विभाजन के दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि पक्षकारों के बीच मामला की भूमि पर स्वामित्व और कब्जे की एकता नहीं है। उक्त निष्कर्ष के विरुद्ध, वर्तमान अपील दायर की गई है, जो मुकदमे की निरंतरता है। उत्तरदाता उत्तरदाताओं द्वारा दावा किए गए पिछले विभाजन के मामले को निचली न्यायालय ने स्वीकार कर लिया है। अपीलकर्ताओं द्वारा निषेधाज्ञा याचिका में विशेष रूप से यह दावा किया गया है कि उत्तरदाताओं ने 50 से अधिक विक्रय विलेख निष्पादित किए हैं, जिनमें से वादी/अपीलकर्ताओं ने वर्तमान कार्यवाही में उत्तरदाताओं/प्रतिवादियों द्वारा निष्पादित 24 विक्रय विलेख दायर किए हैं, जिन्हें उत्तरदाता उत्तरदाताओं ने अस्वीकार नहीं किया है।

23. इसके अलावा, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने **सिद्धेश्वर मुखर्जी बनाम भुवनेश्वर प्रसाद नारायण सिंह एवं अन्य, एआईआर 1953 एससी 487** में दर्ज मामले का हवाला दिया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि "संयुक्त परिवार की संपत्ति में सहदायिक अविभाजित हिस्सेदारी का क्रेता, खरीदी गई संपत्ति पर कब्जा पाने का हकदार नहीं है। उसे केवल संपत्ति के बँटवारे के लिए मामला दायर करने और विवादित संपत्ति में अपने हिस्से के आवंटन की माँग करने का अधिकार है।"

24. **धर्म नाथ ओझा बनाम रघु नाथ ओझा (2001) 2 पीएलजआर 268** में प्रतिवेदित मामले में, इस न्यायालय ने यह माना है कि "यदि कोई मामला न्यायनिर्णयन के लिए स्वीकार कर लिया गया है, तो यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह मुकदमे की विषय-वस्तु को उचित आदेश द्वारा संरक्षित करे ताकि वह अंतिम न्यायनिर्णयन के समय उपलब्ध रहे और डिक्री निरर्थक न हो जाए"। वर्तमान अपील में मुख्य प्रश्न यह है कि क्या मामला में शामिल संपत्ति संयुक्त परिवार की संपत्ति है या नहीं और क्या गंगा देवी के पक्ष में विक्रय विलेख उनके स्त्रीधन के माध्यम से खरीदी गई संपत्ति है। इस मुद्दे का निर्णय अपील के अंतिम न्यायनिर्णयन में किया जाना है।

25. **दलपत कुमार (उपरोक्त)** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने सुविधा और अपूरणीय क्षति के संतुलन की व्याख्या की है। निषेधाज्ञा देने से पहले न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह पक्षकारों के आचरण, किसी भी पक्ष को होने वाली संभावित क्षति और निषेधाज्ञा अस्वीकार होने पर वादी को पर्याप्त क्षतिपूर्ति दी जा सकती है या नहीं, इस पर विचार करे। वर्तमान में उत्तरदाताओं द्वारा और इस निषेधाज्ञा याचिका के लंबित रहने के दौरान भी कई विक्रय विलेख निष्पादित किए गए हैं। यह सत्य है कि यदि कोई संक्रामण किया जाता है, तो वह संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 52 के अंतर्गत *लिस पेंडेंस* के सिद्धांत के अधीन होगा। **दलपत कुमार (उपरोक्त)** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि "अंतरिम निषेधाज्ञा देने की शक्ति का प्रयोग करते हुए न्यायालय को मुकदमे की

विषय-वस्तु को फिलहाल यथास्थिति बनाए रखना होगा। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा है कि प्रथम दृष्टया मामले को प्रथम दृष्टया अधिकार के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए, जिसे मुकदमे में साक्ष्य के आधार पर स्थापित किया जाना चाहिए। केवल प्रथम दृष्टया मामला ही उठाया गया एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, जो सद्भावनापूर्ण है, जिसकी जाँच और गुण-दोष के आधार पर निर्णय की आवश्यकता है। हालाँकि, अपूरणीय चोट का अर्थ यह नहीं है कि चोट की मरम्मत की कोई भौतिक संभावना नहीं होनी चाहिए, बल्कि इसका अर्थ केवल यह है कि चोट भौतिक होनी चाहिए, अर्थात् किसी को क्षतिपूर्ति के रूप में पर्याप्त रूप से क्षतिपूर्ति नहीं की जा सकती।" यह भी माना गया है कि वाक्यांश "प्रथम दृष्टया मामला", "सुविधा का संतुलन" और "अपूरणीय क्षति" मंत्रोच्चार के लिए अलंकारिक वाक्यांश नहीं हैं, बल्कि व्यापकता और लचीलेपन के शब्द हैं, जो दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में मनुष्य की सरलता द्वारा प्रस्तुत असंख्य स्थितियों का सामना करने के लिए हैं लेकिन न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए हमेशा न्यायिक विवेक के उचित प्रयोग से सुरक्षित रहते हैं। इसके अलावा, यह भी माना गया है कि न्यायालय को अंतरिम निषेधाज्ञा देने की शक्ति का प्रयोग करते हुए मुकदमे की विषय-वस्तु को यथास्थिति के तहत संरक्षित करना होगा।

26. उपरोक्त निर्णयों, अभिलेखों में उपलब्ध सामग्री और पक्षों के आचरण को देखते हुए, दोनों पक्षों को निर्देश दिया जाता है कि वे अपील के लंबित रहने के दौरान मामला की संपत्ति को हस्तांतरित करने से रोकें।

27. तदनुसार, 2022 की आई.ए. सं. 10 को अनुमति दी जाती है।

(खातिम रेज़ा, न्यायमूर्ति)

प्रभात/-

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।